प्रेमचंद का जादू



प्रफुल्ल कोलख्यान

बंगाल के बड़े-बड़े कलाभवन में, बड़े स्तर पर ही नहीं छोटी-छोटी जगहों पर भी व्यक्तिगत स्तर पर किये गये सामाजिक प्रयास से जिस तरह रवींद्र जयंती मनायी जाती है, वह बंगाल के समाज और इसकी जातीय चेतना के विधायक तत्वों का ज्ञान कराने के लिए पर्याप्त है। समाज और साहित्य की अंतर्प्रवाही अंतर्चेतना की सचेत सक्रियता से ही व्यक्ति और जातीय जीवन में मानवीय द्युति की ऊर्जा समुत्पन्न होती है। साहित्य और समाज दोनों में से किसी एक की भी पारस्परिक उदासीनता इसे असंभव बना देती है। कवि-गुरू रवींद्रनाथ ठाकुर ने मनुष्य के व्यक्ति, जातीय, राष्ट्रीय और वैश्विक मन को न सिर्फ समझा बल्कि इनमें अधिकतम संतुलन और संगति की नैसर्गिक बहाली के सफल सर्जनात्मक उत्सव का उपादान भी तैयार किया।

आज आदमी का मन नये सिरे से व्यथित है। समय रहते इस व्यथा की टोह नहीं ली गई तो सभ्यता के अंतरंग में क्रूरता के अबाध प्रवेश को रोक पाना असंभव हो जायेगा। मन को समझने के लिए सभ्यता की शुरुआत से ही आदमी उद्यमशील रहा है। आधुनिकता की परियोजना के प्रारंभ में मन पर बहुत गहराई से किया गया विचार मिलता है। मन को आधुनिक दृष्टि से समझने में आधुनिकता के अनुषंगी चरित्र का भी असर पड़ा। आधुनिकता का प्रस्थान-बिंदु है, संदेह। प्रारंभ के उत्साह में अति के लिए भरपूर गुंजाइश रहती है। संदेह की अति में पड़कर आधुनिकता ने हर किसी को कसौटी पर चढ़ाया। मन भी कसौटी पर चढ़ा। सिग्मंड फ्रायड ने मन की बहुत बारीक व्याख्या की। साबित यह हुआ कि मन में सिर्फ दमित इच्छाएँ रहती हैं। स्वप्न को भी दमित इच्छाओं ही से जोड़कर देखा गया। दीपक की लौ में कालिख होती है, इस बात को कौन नहीं स्वीकार करेगा? लेकिन क्या इस स्वीकार के बोझ से दबकर यह तथ्य दम तोड़ सकता है कि दीपक की लौ

में रौशनी भी होती है! समय रहते मन को नये सिरे से समझने का प्रयास नहीं किया गया तो सभ्यता बे-पटरी हो जा सकती है।

जीवन में तरह-तरह के अनुभव होते रहते हैं। कभी ऐसे कि मन आशा से भर जाए, तो कभी ऐसे कि जीने तक से मन रूठ जाए। मेरी पढ़ाई-लिखाई झारखंड के कथारा कोलियरी में पिता के संग रहते हुए हुई। पहले कथारा में स्कूल-कॉलेज की अच्छी व्यवस्था नहीं थी, बल्कि एक तरह से कहें तो थी ही नहीं। अब तो वहाँ कई अच्छे स्कूल खुल गए हैं। इन स्कूलों से अच्छे-अच्छे छात्र निकल रहे हैं। माहौल भी थोड़ा-बहुत बदला है। पहले जहाँ चारों ओर सिर्फ कोलियरी का धुआँस छाया रहता था, वहीं अब चहल-पहल के कई अवसर बन गए हैं। मैं तो रोटी के लिए कोलकाता चला आया लेकिन मेरे कई रिश्तेदार और बाल-मित्र झाड़खंड के कथारा और खिलाड़ी में हैं।

कथारा जाने का सुयोग गाहे-ब-गाहे मिलता रहता है। संयोग से, मैं उस दिन वहीं था। मेरे एक रिश्तेदार के सातवें क्लास में पढ़ रहे बेटे को डीएभी स्कूल से निकाल दिया गया था। वे किसी दूसरे स्कूल में अपने बेटे का दाखिला करवाकर अपने प्रभाव ओर प्रताप का परिचय देना चाहते थे। लेकिन, कागज देखकर मैं सन्न रह गया। स्कूल से निकाले जाने का कारण 'बैड कैरेक्टर' लिखा था। मैंने उन्हें किसी तरह समझाया कि इस कागज पर दुनिया के किसी स्कूल में उनके बेटे का दाखिला नहीं हो सकता है, लिहाजा अगर बच्चे के भविष्य का जरा भी ख्याल हो तो प्रिंसिपल साहब से फौरन मिलकर मामले को रफा-दफा करने की कोशिश करनी चाहिए। वे किसी भी तरह से प्रिंसिपल के सामने जाने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे। अंतत: मैं खुद तैयार हुआ। उन्होंने मेरा इतना अनुरोध जरूर माना कि वे स्कूल के बाहर खड़े रहेंगे और स्थिति के अनुकूल होने पर उपलब्ध होंगे।

प्रिंसिपल से मेरा परिचय नहीं था। वे मेरी बात भला क्यों मानेंगे! मैंने नाम और प्रयोजन का उल्लेख करते हुए विधिवत पूर्जी भेजी। दस-पंद्रह मिनट के बाद बुलावा आया। प्रिंसिपल मेरे सामने फट पड़े। पाँच मिनट तक बोलते रहे। मैं चुपचाप सुनता रहा। प्रिंसिपल साहब ने यह भी कहा कि मैंने तो उसके बाप बुलाया था, चेतावनी देकर छोड़ देने के लिए। गार्जियन को बुलाने का बच्चे पर असर पड़ता है। लेकिन वह तो ऐसा

अड़ियल निकला कि मार-पीट पर ही उतारू हो गया! अब कुछ नहीं हो सकता है, कुछ भी नहीं। बिना किसी प्रतिरोध के धैर्यपूर्वक सुने जाने पर उनका क्रोध कुछ कम हुआ। क्रोध कम हुआ तो विवेक सक्रिय हुआ। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद उन्होंने मेरा परिचय पूछा और यह भी कि मैं क्या चाहता हूँ। मैं अपना परिचय लेखक के रूप में देना चाहता था लेकिन मेरे मुँह से निकला यह कि मैं प्रेमचंद का पाठक हूँ। बच्चे का और आपका भी शुभचिंतक हूँ। अपने एक-दो सवाल आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ। मन हो तो जवाब दीजिएगा, नहीं मन हो तो नहीं दीजिएगा। मैं चुपचाप चला जाऊँगा। लेकिन अगर आपके सामने अपने सवाल नहीं रखूँ तो अपने को कभी माफ नहीं कर पाऊँगा। गलती बाप की और सजा बच्चे को? जिस निरक्षर और अड़ियल आदमी को आप प्रिंसिपल रहते दो मिनट नहीं झेल पाए उसे पिता के रूप में दिन-रात झेलनेवाले अपने छात्र की मनोब्यथा को आप नहीं समझेंगे तो कौन समझेगा? परिचय में 'प्रेमचंद का पाठक' सुनकर तो वे चौंक ही पड़े थे। एकाध मिनट की चुप्पी के बाद मैं जाने लगा तो उन्होंने मुझे आग्रहपूर्वक बैठाया। बच्चे के पिता को बुलवाकर पछतावा जाहिर किया और बच्चे को फिर से दाखिल कर लिया गया। चलते समय प्रिंसिपल साहब ने 'नशा' का उल्लेख करते हुए कहा, 'आपने बड़े पाप से मुझे बचा लिया। आपका परिचय मुझे याद रहेगा, अब मैं भी यह परिचय दिया करूँगा; मैं भी तो प्रेमचंद का पाठक हूँ!'

बाहर निकलने पर मेरे रिश्तेदार ने बार-बार पूछा कि आपने क्या जादू किया! जादू? जादू तो प्रेमचंद का है। जिस समाज के पास प्रेमचंद हैं, उस समाज को किसी और 'जादू' की क्या जरूरत! दुख और पराजय के क्षण में उस दिन के 'प्रेमचंद के जादू' से बहुत बल मिलता है। हमारा हिंदी समाज प्रेमचंद से वैसा संबंध कब विकसित कर पायेगा जैसा संबंध रवींद्रनाथ ठाकुर से बांगला समाज का है?

बाद में ऐसा भी हुआ कि फिर एक बच्ची के नामांकन के सिलसिले में उनके समक्ष उपस्थित होना पड़ा। लेकिन उन्होंने किसी भी कीमत पर उसके नामांकन को असंभव बताकर मुझे विदा किया। मैं स्कूल के गेट के पास पहुँचा ही था कि मेरा एक बालसंगी मिल गया जो इलाके में गुंडे के रूप में अपनी स्वीकृति बना चुका था। उसके पूछने पर मैंने उसे पूरी रामकहानी बता दी। उसने अपनी मोटरवाइक वहीं खड़ी कर दी और मुझे साथ चलने का लगभग आदेश दिया। मैं उसके पीछे लग गया। अपने प्रभाव का जैसा इस्तेमाल वह कर सकता था वैसा इस्तेमाल उसने किया। बच्ची का नामांकन हो गया। जाते समय अपने बालसंगी के बाहर

निकल जाने पर मैंने प्रिंसिपल महदय से अपने बालसंगी के व्यवहार के लिए माफी माँगी। साथ में मैंने यह भी कहा कि जिस काम का होना मेरे अनुरोध से असंभव था, वह काम एक गुंडे के कहने से संभव हो गया। ऐसे में समाज में किसका प्रभाव कायम होगा! मेरे जैसे प्रेमचंद के साधारण पाठकों का या मेरे बालसंगी जैसे लोगों का! बावजूद इसके मेरे मन में आज भी 'प्रेमचंद के जादू' का वही असर है, और आपके मन में!

इस सामग्री के उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान